श्रीनेमिचन्द्र शास्त्री
पी-एच०, डी० जैन कालेज, आरा

संस्कृत-कोषसाहिय को आचार्य हेम की अपूर्व देन

संस्कृत-कोशसाहित्य की परम्परा :—संस्कृत भाषा में कोष-ग्रन्थ लिखने की परम्परा वैदिक युग से चली आ रही है. निघण्टव :—निघण्टुओं की महत्त्वपूर्ण शब्दावली यास्क के निरुक्त के साथ उपलब्ध है. विलुप्त कोष-ग्रन्थों में भागुरिकृत कोश का नाम सर्वप्रथम आता है.[1] अमरकोष की टीका में भागुरि के प्राचीन उद्धरण उपलब्ध होते हैं. भानुजि दीक्षित ने अपनी अमरकोशटीका में आचार्य आपिशल का एक वचन ऊद्धृत किया है.[2] जिससे स्पष्ट है कि उन्होंने भी कोई कोषग्रन्थ लिखा है. उणादिसूत्र के वृत्तिकाल उज्ज्वयलदत्त द्वारा उद्धृत एक वचन से भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है. आपिशल वैयाकरण थे, इनका स्थिति काल पाणिनि से पूर्व है.

केशव ने नानार्थार्णव संक्षेप में शाकटायन के कोशविषयक वचन ऊद्धृत किये हैं, जिनसे इनके कोशकार होने की संभावना है.[3] अभिधान चिन्तामणि आदि कोशग्रन्थों की विभिन्न टीकाओं में व्याडिकृत किसी विलुप्त कोश के उद्धरण मिलते हैं.[4] कीथ ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में नाममाला के कर्त्ता कात्यायन, शब्दार्णव के रचयिता वाचस्पति और संसारावर्त के लेखक विक्रमादित्य का उल्लेख किया है.[5]

उपलब्ध कोशग्रन्थों में सबसे प्राचीन और ख्यातिप्राप्त अमरसिंह का अमरकोश है. डॉ० हार्नले ने इसका रचनाकाल ६२५-६४० ई० के बीच माना है. यह समानार्थ शब्दों का संग्रह है और विषय की दृष्टि से इसका विन्यास तीन काण्डों में किया गया है. इसकी अनेक टीकाओं में ग्यारहवीं शताब्दी में लिखी गयी क्षीरस्वामी की टीका बहुत प्रसिद्ध है. इसके परिशिष्ट के रूप में संकलित पुरुषोत्तमदेव का त्रिकाण्डशेष है, जिसमें उन्होंने विरल शब्दों का संकलन किया है. कवि और वैयाकरण के रूप में ख्यातिप्राप्त हलायुध ने अभिधानरत्नमाला नामक कोशग्रन्थ ई० सन् ९५० के लगभग लिखा है. इसमें पर्यायवाची समानार्थक शब्दों का संकलन है. दाक्षिणात्य आचार्य यादव ने वैज्ञानिक पद्धति पर वैजयन्ती कोश लिखा है. नवीं शती के विद्वान् धनञ्जय ने नाममाला, अनेकार्थनाममाला और अनेकार्थनिघण्टु ये तीन कोशग्रन्थ लिखे हैं, ये तीनों कोश छात्रोपयोगी, सरल और सुन्दर शैली में लिखे गये हैं.

कोश साहित्य की समृद्धि की दृष्टि से बारहवीं शताब्दी महत्त्वपूर्ण है. इस शती में केशवस्वामी ने नानार्थार्णवसंक्षेप एवं शब्दकल्पद्रुम, महेश्वर ने विश्वप्रकाश, अभयपाल ने नानार्थरत्नमाला और भैरव कवि ने अनेकार्थकोष की रचना की है. इसी शताब्दी के महाविद्वान् आचार्य हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि, अनेकार्थसंग्रह एवं निघण्टुशेष की रचना की है.

१. सर्वानन्दविरचित टीकासर्वस्व भाग १ पृ० १९३.
२. अमरटीका १।१।६६ पृ० ६८.
३. अभिधानचिन्तामणि—चौखम्बा संस्करण प्रस्तावना पृ० ६.
४. अभिधानचिन्तामणि १।५, ३४।२२ और २५.
५. कीथ-संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ४८६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौदहवीं शताब्दी में मेदिनिकर ने अनेकार्थशब्दकोश, हरिहर के मन्त्री इरुपद दण्डाधिनाथ ने नानार्थरत्नमाला और श्रीधरसेन ने विश्वलोचन कोश लिखा है. सत्रहवीं शती में केशव दैवज्ञ ने कल्पद्रुम और अप्पय दीक्षित ने नामसंग्रहमाला एवं वेदांगराय ने पारसीप्रकाश कोश की रचना की है. इनके अतिरिक्त महिप का अनेकार्थतिलक, श्रीमल्लभट्ट का आख्यातचन्द्रिका, महादेव वेदान्ती का अनादिकोश, सौरभी का एकार्थनाममाला—द्व्यक्षरनाममाला कोश, राघव कवि का कोशावतंस, भोज का नाममाला कोश, शाहजी का शब्दरत्नसमुच्चय, कर्णपूर का संस्कृत-पारसीकप्रकाश एवं शिवदत्त का विश्वकोश उपयोगी संस्कृत कोशग्रंथ हैं.

आचार्य हेम का महत्त्व और उनकी ऐतिहासिक सामग्री—हेमचन्द्र के संस्कृतकोशग्रंथ साहित्य की अमूल्य निधि हैं. इनके ग्रन्थों में भाषा, विज्ञान, इतिहास, संस्कृति एवं साहित्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण सामग्री संकलित है. अभिधानचिन्तामणि की स्वोपज्ञवृत्ति में इन्होंने अपने पूर्वकर्मी ५६ ग्रंथकारों और ३१ ग्रंथों का उल्लेख किया है. यथा :

अमर [५५-१७ तथा २१][१], अमरादि [२७६-२१,२९९-१४], अलंकारकृत् [११२-१३], आगमविद् [७०-१४], उत्पल [७४-१४] कात्य [५६-१०,६२-८] कामन्दकि [५५०।४], कालिदास [४१३-२,'४४०-१६], कौटिल्य [७०-४,२९६-२], कौशिक [१६६- १३,१७०-२८] क्षीरस्वामी [३५०-९,४६१-१७[, गौड [३६-२९,५३-३], चाणक्य [३९४-५] चान्द्र [५२८-२५]दन्तिल[१२१-१२२,५६३-३], दुर्ग[५७-२८, १७४-२७],द्रमिल[१५१-७, २०९-२७], धनपाल[१-५,७६-२१], धन्वन्तरि [१६६-२८,२५९-७], नन्दी [५२-५३], नारद [३५७-१८, नैसक्त[१६४-१८, १८६-६], पदार्थविद्[२०८-२२], पालकाप्य [४९५-२७], पौराणिक [३७३-६] प्राच्य [२८-२६], बुद्धिसागर २४५-२५], बौद्ध [१०१-१७] भट्टतौत [२४-१७], भट्टिट [५९३-२३], भरत [११७-९] भागुरि [६६-१४], भाष्कार [६६-२३], भोज [१५७-१७], मनु [६३-११], माघ [९२-१७], मुनि [१७१-१८] याज्ञवल्क्य [३३६-२] याज्ञिक [१०३-९]' लौकिक [३७८-२३], वाग्भट [१६७-१], वाचस्पति [१-६], वासुकि [१-५], विश्वदत्त [४९-८], वैजयन्तीकार [१३१-२३], वैद्य [१६६-२८], व्याडि [१-५] शाब्दिक [४३-७], शाश्वत [६४-७], श्रीहर्ष [११८-७], श्रुतिज्ञ [३३२-२७], सभ्य [१३४-१], स्मार्त [२०९-२१०], हलायुध [१४४-१५] एवं हृद्य [४५३-२७].

इन ग्रंथकारों के अतिरिक्त अमरकोश [८-५], अमरटीका ४५-१३]. [अमरमाला [४४०-३२], अमरशेष [१५३-२०], अर्थशास्त्र [२९७-२५] धातुपारायण [१-११], भारत [३३८-१३], महाभारत [८१-२३], वामनपुराण [४६-२९], विष्णु-पुराण [६९-१९], शाकटायन [२-१], एवं स्मृति [३५-२७] आदि ३१ ग्रंथों का भी उल्लेख किया है.

जहां शब्दों के अर्थ में मतभेद उपस्थित होता है, वहाँ आचार्य हेम अन्य ग्रंथ तथा ग्रंथकारों के वचन उद्धृत कर उस मतभेद का स्पष्टीकरण करते हैं. फलतः प्रसंगवश अनेक ग्रंथ और ग्रंथकारों के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी की सामग्री वर्तमान है. विलुप्त कोशकार भागुरी और व्याडि के सम्बन्ध में अभिधान-चिन्तामणि से ही तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है.

नवीन शब्दों का संकलन—अभिधानचिन्तामणि में इस प्रकार के शब्द प्रचुर परिमाण में आये हैं, जो अन्य कोशग्रंथों में नहीं मिलते. अमरकोश में सुन्दर के पर्यायवाची—सुन्दरम्, रुचिरम्, चारुः, सुषमम्, साधुः, शोभनम्, कान्तम्, मनोरमम्, रुच्यम्, मनोज्ञम्, मंजुः और मंजुलम् ये बारह शब्द आये हैं. हेम ने इसी सुन्दरम् के पर्यायवाची चारुः, हारि रुचिरम्, मनोहरम्. वल्गु., कान्तम् अभिरामम्, बन्धुरम्, वामम्, रुच्यम्, शुषमम्, शोभनम्, मंजुलम्, मंजुः, मनो-रमम्, साधुः, रम्यम्, मनोरमम्, पेशलम्, हृद्यम्, काम्यम्, कमनीयम्, सौम्यम्, मधुरम् और प्रियम् ये २६ शब्द बतलाये हैं. इतना ही नहीं हेम ने अपनी वृत्ति में 'लडह' देशी शब्द को भी सौंदर्यवाची ग्रहण किया है. अमरकोश के साथ तुलना करते हुए कुछ शब्दों के पर्यायों का निर्देश किया जाता है.

---

१. अभिधानचिन्तामणि के भावनगर संस्करण के पृष्ठ और पंक्ति निर्दिष्ट हैं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम	अमरकोश की पर्यायसंख्या	अभिधानचिन्तामणि की पर्यायसंख्या
सूर्य	३७	७२
किरण	११	३६
चन्द्र	२०	३२
शिव	४८	७७
गौरी	१७	३२
ब्रह्मा	२०	४०
विष्णु	३६	७५
अग्नि	३४	५१

पर्यायवाची शब्दों की सांख्याधिक्य के अतिरिक्त ऐसे नवीन शब्द भी समाविष्ट हैं, जो संस्कृति और साहित्य के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हैं. इस कोश में जिसके वर्ण या पद लुप्त हों—जिसका पूरा-पूरा उच्चारण नहीं किया गया हो उस वचन का नाम 'ग्रस्तम्' और थूकसहित वचन का नाम 'अम्बूकृतम्' आया है. शुभवाणी-कल्याणप्रद वचन का नाम 'कल्या', हर्ष-क्रीड़ा से युक्त वचन के नाम 'चर्चरी' और 'चर्मरी' एवं निन्दापूर्वक उपालम्भयुक्त वचन का नाम 'परिभाषण' आया है. जले हुए भात के लिए मिस्सटा [३-६०] और दग्धिका नाम आये हैं. गेहूं के आटे के लिए समिता [३-६६] और जौ के आटे के लिए चिक्कस [३-६६] नाम आए हैं. नाक की विभिन्न बनावट वाले व्यक्तियों के विभिन्न नामों का उल्लेख भी इस बात का सूचक है कि आचार्य हेम को मानवशास्त्र की कितनी अधिक जानकारी थी. इन्होंने चिपटी नाकवाले को नतनासिक, अवनाट, अवटीट और अवभ्रट, नुकीली नाकवाले को खरणास, छोटी नाकवाले को नःक्षुद्र और क्षुद्रनासिक, खुर के समान बड़ी नाकवाले को खुरणस एवं ऊंची नाकवाले को उन्नस और उग्रनासिक कहा है.[1] नृतत्त्वविज्ञान का अध्ययन करनेवाले शरीर के अन्य अंगोपांगों के साथ नाक एवं केशरचना को विशेष महत्त्व देते हैं. यों तो मानवसमूहों के प्रजातीय वर्गीकरण के लिए शरीर के विभिन्न अंगों की नापजोख, रक्तसमूह-विश्लेषण, मांसपेशियों का गठन, त्वचा, आंख और केश के रंग एवं केश-रचना का उपयोग करते हैं, पर नाक और आंख की बनावट प्रमुख स्थान रखती है. हेम ने इस दृष्टि से मंगोलॉयड, काकेसायड, अफ्रीकी नीग्रॉयड, मेलानेशियन और पालीनेशियन प्रजातियों के मानवों का चित्र उपस्थित कर दिया है. अंगोपांगों के विभिन्न नामों के विवेचन से यह सहज में अवगत किया जा सकता है कि हेम को नृतत्त्वज्ञान की गहरी जानकारी थी.

पति-पुत्र से हीन स्त्री के लिए निर्वीरा [३-१९४], जिस स्त्री को दाढ़ी या मूंछ के बाल हों, उसको नरमालिनी [३-१९५], बड़ी शाली के लिए कुली [३-२१८] और छोटी शाली के लिए हाली, यन्त्रणी और केलिकुंचिका [३-२१६] नाम आये हैं. छोटी शाली के इन नामों को देखने से अवगत होता है कि उस समय में छोटी शाली के साथ हँसी-मजाक करने की प्रथा थी. साथ ही पत्नी की मृत्यु के पश्चात् छोटी शाली से विवाह भी किया जाता था. इसी कारण इसे केलिकुंचिका कहा गया है.

दाहिनी और बायीं आँखों के लिए पृथक्-पृथक् शब्द इसी कोश में आये हैं. दाहिनी आंख का नाम मानवीय और बायीं आंख का नाम सौम्य [३-२४०] कहा गया है. इसी प्रकार जीभ के मैल को कुलुकम् और दांत के मैल को पिप्पिका [३-२६६] कहा गया है. मृगचर्म के पंखे का नाम धवित्रम्, कपड़े के पंखे का नाम आलावर्तम् एवं ताड़ के पंखे का नाम व्यजनम् [३-३५१-५२] आया है. नाव के बीचवाले डण्डों का नाम पोलिंदा, ऊपरवाले भाग का नाम मंग एवं नाव के भीतर जमे हुए पानी को बाहर फेंकनेवाले चमड़े के पात्र का नाम सेकपात्र या सेचन [३-५४२] बताया है. ये शब्द अपने भीतर साँस्कृतिक इतिहास भी समेटे हुए हैं. छप्पर छाने के लिए लगायी गई लकड़ी का नाम गोपानसी [४-७५], जिस

१. अभिधानचिन्तामणि ३।११५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में बांधकर मथानी घुमायी जाती है, उस खम्भे का नाम विष्कम्भ [४-८६], सिक्का आदि रूप में परिणत सोना-चांदी, तांबा आदि सब धातुओं का नाम रूप्यम्, मिश्रित सोना-चांदी का नाम घनगोलक [४-११२-११३], कूंआ के ऊपर रस्सी बांधने के लिए काष्ठ आदि की बनी हुई चरखी का नाम तंत्रिका [४-१५७], घर के पास वाले बगीचे का नाम निष्कुट, गांव या नगर के बाहरवाले बगीचे का नाम पौरक [४-१७८], क्रीड़ा के लिए बनाये गए बगीचे का नाम आक्रीड या उद्यान [४-१७८], राजाओं के अन्तःपुर के योग्य घिरे हुए बगीचे का नाम प्रमदवन [४-१७६], धनिकों के बगीचे का नाम पुष्पवाटी या वृक्षवाटी [४-१७६] एवं छोटे बगीचे का नाम क्षुद्राराम या प्रसीदिका [४-०१७६] आया है.

प्रसाधनसामग्री सूचक शब्दावलि—अभिधानचिन्तामणि का जहाँ अनेक दृष्टियों से महत्त्व है, वहां प्राचीन भारत में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न प्रकार की प्रसाधनसामग्री की दृष्टि से भी. इस कोश में शरीर को संस्कृत करने को परिकर्म (३।२९९), उबटन लगाने को उत्सादन (३।२९९), कस्तूरी-कुंकम का लेप लगाने को अंगराग; चन्दन, अगर, कस्तूरी और कुंकुम के मिश्रण को चतुःसमम्; कर्पूर अगर; कंकोल, कस्तूरी और चन्दनद्रव को मिश्रित कर बनाये गये लेपविशेष को यक्षकर्दम एवं शरीरसंस्कारार्थ लगाये जानेवाले लेप का नाम वर्ति या गात्रानुलेपनी कहा गया है. मस्तक पर धारण की जाने वाली फूल की माला का नाम माल्यम्, बालों के बीच में स्थापित फूल की माला का नाम गर्भ चोटी में लटकनेवाली फूलों की माला का नाम प्रभ्रष्टकम्, सामने लटकती हुई पुष्पमाला का नाम ललामकम्, छाती पर तिर्छी लटकती हुई पुष्पमाला का नाम वैकक्षम्, कण्ठ से छाती पर सीधे लटकती हुई फूलों की माला का नाम प्रालम्बम्, शिर पर लपेटी हुई माला का नाम आपीड, कान पर लटकती हुई माला का नाम अवतंस एवं स्त्रियों के जूडे में लगी हुई माला का नाम बालपाश्या आया है.[1]

इसी प्रकार, कान, कण्ठ, गर्दन, हाथ, पैर, कमर आदि विभिन्न अंगों में धारण किये जाने वाले आभूषणों के अनेक नाम आये हैं.[2] इन नामों से अवगत होता है कि शरीर को सजाने की प्रथा किस-किस रूप में प्रचलित थी. प्रसाधनसामग्री में विभिन्न प्रकार के वस्त्राभूषणों साथ नाना प्रकार के सुगन्धित पदार्थ भी परिगणित थे. रेशमी, सूती और ऊनी वस्त्रों के उपयोग करने के विभिन्न तरीके ज्ञात थे. वस्त्र त्वक्-तीसी, सन आदि की छाल, फल-कपास, क्रिमि-रेशम के कीड़े आदि एवं रोम—भेड़ों की ऊन या ऊंटों की ऊन से तैयार किये जाते थे.[3] मृग-हरिण के रोम से भी वस्त्र तैयार किये जाते थे. इस प्रकार के वस्त्रों को रांकवम्[4] कहा है. साड़ी के नीचे स्त्रियां साया—पेटीकोट भी पहनती थीं, आचार्य हेम ने इस कोश में धनिक और उत्तमकुल की महिलाओं के द्वारा साड़ी के नीचे धारण किये जाने वाले पेटीकोट के चण्डातकम् और चलनक ये दो नाम लिखे हैं.[5] सामान्य परिवार की स्त्रियां जिस पेटीकोट को पहनती थीं, उसका नाम चलनी कहा है.[6] ब्लाउज भी अनेक प्रकार के उपयोग में लाये जाते थे तथा इनके सीने के भी अनेक तरीके प्रचलित थे. उनके चोल, कञ्चुलिका, कूर्पासक, अंगिका एवं कञ्चुक[7] नाम वस्त्रों की विविधता के साथ सीने के प्रकारों पर भी प्रकाश डालते हैं. पलंगपोश का रिवाज भी समाज में था, सूती पलंगपोश, जो कि गद्दे के ऊपर बिछाया जाता था, निचोल कहलाता (३।३४०) था. साधारणतः बिछाने के काम में आनेवाली चादर प्रच्छदपट (३।३४०) कही जाती थी. निचुल (३।३४०) उस पलंगपोश का नाम है जो धनिक और सम्पन्न व्यक्तियों के यहाँ उपयोग में लाया जाता था. यह रेशमी होता था. इसके ऊपर कारीगरी भी की जाती थी, साधारण और मध्यमकोटि के व्यक्ति जिस चादर का उपयोग करते थे, उसे उत्तरच्छद (३।३४०) कहा है.

---

१. देखें—काण्ड ३ श्लोक ३१४-३२१.
२. देखें—काण्ड ३ श्लोक ३२०-३२१.
३. त्वक्फलक्रिमिरोमभ्यः संभवाच्चतुर्विधम्—३।३३२.
४. अभिधान चिन्तामणि ३।३३३.
५. वही ३।३३८.
६. वही ३।३३८. ७. वही ३।३३८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाजामा, अंगरखा या बुर्का का नाम आप्रपदीन (३।३४२) आया है. इससे स्पष्ट है कि प्रसाधनसामग्री में पजामा भी आ चुका था. जालीदार कपड़े भी काम में लाये जाते थे, इन्हें शाणी और गोणी (३।३४३) कहा है. पैरों को मोजा या पैताबा पहनकर सजाया जाता था. अतः मौजा का नाम अनुपदीना (३।५७९) आया है. पुष्पों से भी शरीर का प्रसाधन किया जाता था, इस प्रसाधन के भी अनेक नाम आये हैं. गुलदस्ते भी उपयोग में लाये जाते थे. हेम के गुच्छों के नामों में आया हुआ गुलुञ्छ (४।१९२) शब्द गुलदस्ते का ही वाचक है.

भाषाविज्ञानसम्बन्धी सामग्री—भाषाविज्ञान की दृष्टि से यह कोश बड़ा मूल्यवान् है. आचार्य हेम ने इसमें जिन शब्दों का संकलन किया है, उन पर प्राकृत, अपभ्रंश एवं अन्य देशी भाषाओं के शब्दों का पूर्णतः प्रभाव लक्षित होता है. उसके अनेक शब्द तो आधुनिक भारतीय भाषाओं में दिखलायी पड़ते हैं. कुछ ऐसे शब्द हैं, जो भाषाविज्ञान के समीकरण, विषमीकरण आदि सिद्धान्तों से प्रभावित हैं. यहाँ उदाहरणार्थ कुछ शब्द उद्धृत किये जाते हैं—

[१] पोलिका [३।६२]—गुजराती में पोणी, ब्रजभाषा में पोनी, और भोजपुरी में पिउनी तथा हिन्दी में पिउनी.

[२] मोदको लड्डुकश्च [शेष ३।६४]—हिन्दी में लड्डू, गुजराती में लाडु, और राजस्थानी में लाडू.

[३] चोटी [३।३३९]—हिन्दी में चोटी, गुजराती में चोणी, राजस्थानी में चोड़ी या चुणिका और भोजपुरी में चुटिया.

[४] समौ कन्दुकगेन्दुकौ [३।३५३]—हिन्दी में गेंद, ब्रजभाषा में गिन्द या गिंद, और भोजपुरी में गिंद या गेंद.

[५] हेरिको गूढपुरुषः [३।३९७]—ब्रजभाषा में हेर या हेरना-देखना, गुजराती में हेर.

[६] तरवारि [३।४४६]—ब्रजभाषा में तरवार, राजस्थानी और पूर्वी बोलियों में तलवार तथा गुजराती में तरवार.

[७] जंगलो निर्जलः [४।१९]—ब्रजभाषा, हिन्दी और सभी देशी बोलियों में जंगल.

[८] सुरुंगा तु सन्धिला स्याद् गूढमार्गो भुवोऽन्तरे [४।५१]—ब्रजभाषा, हिन्दी, गुजराती और सभी पूर्वी बोलियों में सुरंग.

[९] निश्रेणी त्वधिरोहिणी [४।७९]—ब्रजभाषा में नसेनी, गुजराती में नीसरणी, भोजपुरी में सीढ़ी, मगही में निसेनी तथा पाली में भी निसेनी रूप आया है.

[१०] चालनी तितउ [४।८४] ब्रजभाषा, राजस्थानी और गुजराती में चालनी, हिन्दी में चलनी या छननी.

[११] पेटा स्यान्मञ्जूषा [४।८१]—राजस्थानी में पेटी गुजराती में पेटी या पेटो और ब्रजभाषा में पिटारी, पेटी.

[१२] परिवारः परिग्रहः [३।३७९]—हिन्दी में परिवार, पूर्वी बोलियों में परिवार और राजस्थानी में पडिवार या परिवाड.

व्युत्पत्तिमूलक विशेषताएँ—**[१] मंक्यते मण्ड्यते वपुरनेन मुकुरः, आत्मा दृश्यतेऽनेनात्मदर्शः, आदृश्यते रूपमस्मिन्नादर्शः, दृप्यन्त्येऽनेन सुवेषा इति दर्पणः [३।३४८]**—जिसके द्वारा शरीर को सुशोभित किया जाय अर्थात् जिसमें अपनी प्रतिकृति का अवलोकन कर मण्डन—प्रसाधन किया जाय उसे मुकुर, जिसमें अपना स्वरूप देखा जाय उसे आत्मदर्श, पूर्ण रूप से अच्छी तरह जिसमें अपना रूप देखा जाय उसे आदर्श और जिसमें अपनी प्रतिकृति देखकर अपने वेष को सुसज्जित किया जाय तथा आकर्षक बनाया जाय उसे दर्पण कहते हैं. दर्पण में अपनी वेष-भूषा देखकर गौरवजन्य आनन्दानुभूति होती है, यह दर्पण शब्द की व्युत्पत्ति से स्पष्ट है. मुकुर, आत्मदर्श, आदर्श और दर्पण ये चारों दर्पण के पर्यायवाची शब्द हैं, किन्तु व्युत्पत्ति की दृष्टि से इन शब्दों के अर्थ में मौलिक अन्तर है.

(२) नक्षति गच्छति व्योमनीति नक्षत्रं, न क्षदति प्रभामिति नक्षत्रम्. तरतीति तारका, तरन्त्यनया ताराः द्योतते ज्योतिः; भाति भं, भा विद्यतेऽस्येति वा; इयर्ति खमिति उडुः, गृह्यते इति ग्रहः, धृष्णोति प्रगल्भते निशीति धिष्ण्यम्. अर्जते गच्छति ऋक्षं, ऋक्ष्णोति तम इति वा (२।२१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नक्षत्र के नौ नामों का निरूपण करते हुए उनकी व्युत्पत्तियाँ देकर अर्थ सम्बन्धी सूक्ष्मताओं पर बहुत सुन्दर प्रकाश डाला गया है. जो आकाश में गमन करे अथवा जिनकी प्रभा—कांति का संवरण कभी न हो वह नक्षत्र है. जो आकाश में तैरता है, वह तारका नक्षत्र है. जिसके द्वारा आकाश का अतिक्रमण किया जाता है वह तारा है. जिसमें प्रकाश विद्यमान है वह ज्योति, जिसमें कांति हो अथवा जो चमकता या टिमटिमाता हो वह भ है. आकाश में उड़ने के कारण उडु, ग्रहण होने के कारण ग्रह, रात्रि में प्रकाशित होने के कारण धिष्ण्य और सीधा गमन करने के कारण ऋक्ष अथवा अन्धकार का ध्वंस करने से ऋक्ष कहा जाता है. नक्षत्र के नामों की व्युत्पत्तियाँ अमरकोष की टीकाओं में भी आयी हैं, किंतु आचार्य हेम ने ऋक्ष, नक्षत्र और भ की व्युत्पत्ति में अपना एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया है.

(३) वेवेष्टि व्याप्नोति विश्वं विष्णुः, हरति पापं हरिः, हृषीकाणामिन्द्रियाणामीशो वशिता हृषीकेशः, प्रशस्ताः केशाः सन्त्यस्य केशवः, इन्द्रमुपगतोऽनुजत्वाद् उपेन्द्रः, विष्वक् सर्वव्यापिनी विषूची वा सेनाऽस्य विष्वक्सेनः, नरा आपो भूतानि वा तान्ययते नारायणः, नरस्य अपत्यं नारायणः, अधः कृत्वाऽक्षाणीन्द्रियाणि जातोऽधोक्षजः अधोऽक्षाणां जितेन्द्रियाणां जायते प्रत्यक्षीभवति वा, अक्षजं ज्ञानमधोऽस्येति वा, गां भुवं विन्दति गोविन्दः, मुञ्चति पापिनो मुकुन्दः, माया लक्ष्म्या धवो भर्ता माधवः मधोरपत्यं वा ; विश्वं बिभर्ति विश्वंभरः, जयति दैत्यान् जिनः, त्रयो विशिष्टाः क्रमाः सृष्टिस्थितिप्रलयलक्षणाः शक्तयोऽस्य त्रिविक्रमः, त्रिषु लोकेषु विक्रमः पादविन्यासोऽस्येति वा, जहाति मुञ्चति पादांगुष्ठाद् गंगामिति जह्नुः, वनमालाऽस्त्यस्य वनमाली, पुण्डरीके इव अक्षिणी अस्य पुण्डरीकाक्षः (२।१३२)

आचार्य हेम ने विष्णु के ७५ नाम बतलाये हैं और स्वोपज्ञवृत्ति में सभी नामों की व्युत्पत्तियां अंकित की गई हैं. उपर्युक्त सन्दर्भ में कुछ ही नामों की व्युत्पत्तियां दी जा रही हैं. इन व्युत्पत्तियों के अनुसार जो संसार को व्याप्त करता है, वह विष्णु है. पाप को नष्ट करने के कारण हरि, इन्द्रियों का विजयी होने के कारण हृषीकेश, प्रशस्त केशवाला होने से केशव, इन्द्र का अनुज होने से उपेन्द्र, विश्व-व्यापिनी सेना रखने के कारण विष्वक्सेन, जल में रहने से नारायण, नर का पुत्र होने से नारायण, इंद्रियज्ञान को तिरस्कृत कर अतींद्रिय, ज्ञान का धारी होने से अधोक्षज, पृथ्वी की रक्षा करने के कारण गोविंद, पाप को छुड़ाने से मुकुन्द, लक्ष्मी का पति होने से माधव, विश्व-संसार का भरण करनेवाला होने से विश्वंभर, दैत्यों को जीतने के कारण जिन, सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय रूप तीनों शक्तियों से युक्त होने से त्रिविक्रम अथवा तीनों लोकों में पादन्यास करने से त्रिविक्रम, पैर के अंगूठे से गंगा नदी को प्रवाहित करने के कारण जह्नुः, वनमाला गले में रहने से वनमाली और पुण्डरीक के समान नेत्र होने से पुण्डरीकाक्ष विष्णु को कहा जाता है. विष्णु के नामों की इन व्युत्पत्तियों में इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से अनेक नयी बातों का समावेश हुआ है.

(४) शिक्ष्यते वर्णविवेकोऽनया शिक्षा. कर्मणां सिद्धरूपः प्रयोगः कल्प्यतेऽवगम्यतेऽनेन कल्पः. व्याक्रियन्तेऽन्वाख्यायन्ते शब्दा अनेन व्याकरणम्. छाद्यतेऽनेन प्रस्ताराद् भूरितिच्छन्दः. ज्योतिषां ग्रहाणां गतिज्ञानहेतुर्ग्रन्थो ज्योतिः ज्योतिषम्. वर्णागमादिभिर्निर्वचनं निरुक्तिः निरुक्तम् (२।१६४).

षडंग की व्युत्पत्तियां प्रस्तुत करते हुए आचार्य हेम ने षडंग का स्वरूप कितने स्पष्ट और विस्तृत रूप से उपस्थित किया है, यह सहज में जाना जा सकता है. जिसके द्वारा वर्णविवेक—वर्णोच्चारण, वर्णों का स्थान, प्रयत्न आदि अवगत हो, उसे शिक्षा कहते हैं. कर्मों का सिद्धस्वरूप जिनके द्वारा ज्ञात किया जाय वे कल्प हैं. इससे स्पष्ट है कि कल्पसूत्रों की आधार-शिला कर्मकाण्ड है तथा हिन्दूधर्म के समस्त कर्म, संस्कार, निखिल अनुष्ठान और समस्त संस्कृति एवं अशेष क्रियाकांड को समझने के लिए एकमात्र आधार ये कल्पग्रंथ ही हैं. प्रकृति और प्रत्यय के विभाग द्वारा शब्दों की व्याख्या करने को व्याकरण कहते हैं. धातु और प्रत्यय के संश्लेषण एवं विश्लेषण द्वारा भाषा के आन्तरिक गठन के विचार को भी इस व्युत्पत्ति में समेट लिया गया है. शब्दों की व्युत्पत्ति एवं उनकी प्राणवन्त प्रकिया के रहस्य का उद्घाटन भी उक्त व्युत्पत्ति में शामिल है. जिसके प्रस्तार से पृथ्वी को आच्छादित किया जा सके, उसे छन्द कहते हैं. इस व्युत्पत्ति में पिंगलाचार्य की समस्त भूमण्डल को व्याप्त करनेवाली कथा भी आ गई है. जिस ग्रंथ से ग्रहों की गति ओर स्थिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का ज्ञान प्राप्त किया जाय, उसे ज्योतिष कहते हैं. वर्णागम वर्णलोप वर्णविकार आदि के द्वारा जिसका निर्वचन उपस्थित किया जाय उसे निरुक्ति कहते हैं.

५. प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्य पश्चादीक्षणं अन्वीक्षा सा प्रयोजनमस्यामान्वीक्षिकी. पुरापि न नवं पुराणम् (२।१६५-१६६). टीकयति गमयत्यर्थान् टीका सुषमाणां विषमाणां च निरन्तरं व्याख्या यस्यां स तथा. पञ्च्यन्ते व्यक्तीक्रियन्ते पदार्था अनया पञ्चिका, पृषोदरादित्वाद् जत्वे पञ्जिका अर्थात् विषमाण्येव पदानि भनक्ति पदभञ्जिका (२।१७०). निबध्यते विशेषोऽस्मिन् निबन्धः (२।१७१). प्रहेलयति अभिप्रायं सूचयति प्रहेलिका (२।१७३).

प्रत्यक्ष और आगम के द्वारा अवगत कर लेने के पश्चात् तर्क आदि के द्वारा विषय को जानना अन्वीक्षा है और यह अन्वीक्षा जिसका प्रयोजन है उसे आन्वीक्षिकी विद्या कहा जाता है. पुराण सदा ही पुरातन रहते हैं, जिनका विषय प्राचीन समय में भी नया न रहे, उसे पुराण कहते हैं. किसी ग्रंथ के साधारण या असाधारण प्रत्येक शब्द की निरन्तर व्याख्या को टीका कहते हैं. विषमपदों को स्पष्ट करने वाली व्याख्या का नाम पञ्जिका है. जिसमें विशेष विषय को निबद्ध किया जाय, उसे निबन्ध कहते हैं. जिस पद्य का अर्थ पूर्वापर विरुद्ध प्रतीत होता हो, परन्तु विशेष अनुसन्धान करने से अविरुद्ध अर्थ निकले, उसे प्रहेलिका या पहेली कहते हैं.

६. बध्नाति स्नेहं बन्धुः (३।२२४). विगृह्यते रोगादिभिरिति विग्रहः (२।२२७) ऊर्ध्वं मिलति धम्मिल्लः (३।२३४). केशानां वेषे रचनायां कूयते कवरी (२।२३४). पलति याति श्वेतत्वं पाकात् पलितं (३।२३५). भाल्यते परिभाष्यते शुभाशुभमत्र भालम् (३।२३७.)

स्नेह के कारण जो बन्धन उत्पन्न करे उसे बन्धु कहते हैं. बन्धु शब्द का व्युत्पत्तिमूलक यही अर्थ है कि जो स्नेहबन्ध का कारण है, वही बन्धु है. जो स्नेह उत्पन्न नहीं करता है, वह बन्धु नहीं कहा जा सकता. रोग आदि के द्वारा जो विकृत किया जाता है, वह विग्रह अर्थात् शरीर कहलाता है. शरीर को रोग आदि नित्य जीर्ण करते रहते हैं.

७. धम्मिल्ल उस केशरचना का नाम है, जो जटाजूट की तरह ऊपर की ओर मिलती है अर्थात् बालों को ऊपर की ओर एकत्र कर बांधना धम्मिल्ल है. यह केशरचना अत्यन्त सावधानी पूर्वक की जाती है. केशों को सजाकर वेणी के रूप में बांधना कवरी है. कवरी और धम्मिल्ल ये दोनों ही प्रकार केशरचना के हैं. महिलाएँ इन दोनों प्रकार की केशरचनाएँ करती थीं.

८. पककर श्वेत हुए बालों को पलित केश कहा गया है. जिस प्रकार धान की फसल पककर समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार समय के प्रभाव से केश भी श्वेत हो जाते हैं.

९. भाल-मस्तक-ललाट उसे कहते हैं, जिसके अध्ययन से शुभाशुभ को कहा जा सके. हाथ, पैर और ललाट के अध्ययन से शुभाशुभ के फलप्रतिपादन की प्रणाली प्राचीन काल से भारत में प्रचलित है. अतः भाल-ललाट की व्युत्पत्ति आचार्य ने यह की है—यों तो '**ललतेऽत्रालंकारो ललाटम्**' अर्थात् जहाँ अलंकार सुशोभित हो, उसे ललाट कहते हैं.

१०. ओष्ठ की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है—"**उष्यते तीक्ष्णाहारेण ओष्ठः**" अर्थात्-तीक्ष्ण आहार से जो अवगत हो और उसकी अनुभूति जिसे निरन्तर होती रहे, उसे ओष्ठ कहते हैं.

११. **भाष्यते भाषा** २।११५—भाषण या कथन को भाषा कहते हैं. **सुष्ठु आ समन्तात् अधीयते स्वाध्यायः** २।१६३—अच्छी तरह अध्ययन करने को स्वाध्याय कहते हैं.

१२. **अवति विघ्नाद् ओम् अव्ययम्** २।१६४—विघ्नों से रक्षा करने वाला 'ओम्' होता है. यह ओम् अव्यय है.

१३. **न श्रियं लाति—अश्लीलम्—न श्रीरस्यास्तीति वा** २।१८०—जिसके आचरण से कल्याण उत्पन्न न हो, उसे अश्लील कहते हैं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. **नियतं द्रान्तीन्द्रियाणि अस्यां निद्रा** २।२२७—जिसमें निश्चित रूप से इन्द्रियों को श्रान्ति—विश्राम मिले, वह निद्रा है.

१५. **पण्डते जानाति इति पण्डितः, पण्डा बुद्धिः संजाता अस्येति** ३।५—जो हिताहित को जानता है अथवा जिसमें विवेक-बुद्धि उत्पन्न हो जाती है, वह पण्डित है.

१६. **छ्यति छिनत्ति मूर्खदुष्टचित्तानि इति छेकः। विशेषेण मूर्खचित्तं दहति इति.** १७. **विदग्धः** ३।७—
जो मूर्ख की मूर्खता को दूर करता है, वह छेक है और जो विशेषरूप से मूर्खता को जलाता है, नष्ट करता है, वह विदग्ध है.

१८. **वाति गच्छति नरं वामा यद्वा विपरीतलक्षणया शृंगारिखेदनाद्वा** ३।१६८—जो नर-पुरुष को प्राप्त हो अथवा विपरीत लक्षणा के द्वारा जो शृंगार द्वारा खेद को प्राप्त करे अर्थात् जो काम-संभोगादि में प्रवीण हो, उसे वामा कहते हैं.

१९. **विगतो धवो भर्ता अस्याः विधवा** ३।१९४—जिसके पति का स्वर्गवास हो गया है अथवा जिसके सुख-काम-भोग के दिन व्यतीत हो गये हों, वह विधवा है.

२०. **दधते बलिष्ठतां दधि** ३।७०—जो बल उत्पन्न करता है अथवा जिस के सेवन से बल प्राप्त होता है, वह दधि है.

२१. **वेव्यते वेष्ट्यते तृणपर्णादिभिरत्युटजः** ४।६०—तिनके और पत्तों से जिसे छाया जाय, वह उटज है.

२२. **वेश्याऽऽचार्यः पीठमर्दः—वेश्याऽऽचार्यो वेश्यानां नृत्तोध्यायः** २।२४४—वेश्या को नृत्त सिखलाने वाला पीठमर्द है. नृत्त उस नाच को कहते हैं, जिसमें नर्तक न गाता है और न बजाता है, केवल मुद्रा-भाव-भंगिमाओं के द्वारा नृत्य प्रस्तुत करता है.

अनेक पर्यायवाची शब्दों के बनाने का विधान :—आचार्य हेम ने भी धनञ्जय के समान शब्दयोग से अनेक पर्यायवाची शब्दों के बनाने का विधान किया है, किन्तु इस विधान में उन्हीं शब्दों को ग्रहण किया है, जो कविसम्प्रदाय द्वारा प्रचलित और प्रयुक्त हैं. जैसे पतिवाचक शब्दों में कान्ता, प्रियतमा, बधू, प्रणयिनी एवं निभा शब्दों को या इनके समान अन्य शब्दों को जोड़ देने से पत्नी के नाम और कलत्रवाचक शब्दों में वर, रमण, प्रणयी एवं प्रिय शब्दों को या इनके समान अन्य शब्दों को जोड़ देने से पतिवाचक शब्द बन जाते हैं. गौरी के पर्यायवाची बनाने के लिए शिव शब्द में उक्त शब्द जोड़ने पर शिवकान्ता, शिवप्रियतमा, शिवबधू एवं शिवप्रणयिनी आदि शब्द बनते हैं. निभा का समानार्थक परिग्रह भी है, किन्तु जिस प्रकार शिवकान्ता शब्द ग्रहण किया जाता है, उस प्रकार शिवपरिग्रह नहीं. यतः कविसम्प्रदाय में यह शब्द ग्रहण नहीं किया गया है.

कलत्रवाची गौरी शब्द में वर, रमण, प्रभृति शब्द जोड़ने से गौरीवर, गौरीरमण, गौरीश आदि शिववाचक शब्द बनते हैं. जिस प्रकार गौरीवर शब्द शिव का वाचक है, उसी प्रकार गंगावर शब्द नहीं. यद्यपि कान्तावाची गंगा शब्द में वर शब्द जोड़ कर पतिवाची शब्द बन सकता है, तो भी कविसम्प्रदाय में इस शब्द की प्रसिद्धि न होने से यह शिव के अर्थ में ग्राह्य नहीं है. आचार्य हेम ने अपनी स्वोपज्ञवृत्ति में इन समस्त विशेषताओं को बतलाया है. अतः स्पष्ट है कि "कविरूढ्यासेयोदाहरणावलि" सिद्धान्तवाक्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है. इसके कई सुन्दर निष्कर्ष निकलते हैं. कविसम्प्रदाय को परिगणित करने से अनेक दोषों से रक्षा हो गयी है. अतएव शिव के पर्याय कपाली के समानार्थक कपालपाल, कपालधन, कपालभुक् कपालनेता एवं कपालपति जैसे अप्रयुक्त और अमान्य शब्दों के ग्रहण से भी रक्षा हो जाती है. यद्यपि व्याकरण द्वारा शब्दों की सिद्धि सर्वथा संभव है, पर कवियों की मान्यता के विपरीत होने से उक्त शब्दों को कपाली के स्थान पर ग्रहण नहीं किया जा सकता है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन संस्कृति और अभिधानचिन्तामणि :—अभिधानचिन्तामणि और धनञ्जननाममाला ऐसे कोष हैं जिनमें संस्कृति के तत्व वर्तमान हैं. अभिधानचिन्तामणि में उत्सर्पण और अवसर्पण काल के साथ तीर्थंकरों के वंश, माता-पिता के नाम, शासनदेवता, उपासक के नाम एवं वर्ण बतलाये गये हैं. कामदेव के पर्यायवाची, द्वादश चक्रवर्तियों के पर्यायवाची, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायणों के पर्यायवाची शब्द संकलित हैं. श्रेणिक और कुमारपाल के पर्यायवाची शब्द भी आये हैं. चालुक्य, राजर्षि, परमार्हत, मृतस्य भोक्ता, धर्मात्मा मारिवारक व्यसनवारक और कुमारपाल ये आठ नाम कुमारपाल के हैं. पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के भेद-प्रभेद एवं उनके पर्याय संकलित हैं. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों के भेदों और पर्यायों का संकलन जैनागमानुसार किया है. रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा धूमप्रभा, तमःप्रभा, और महातमःप्रभा इन सात नरकों में होने वाली वेदना, एवं इन नरकों के विलों का वर्णन जैन सिद्धान्तानुसार किया गया है. घनोदधिवातवलय, घनवातवलय एवं तनुवातवलय का विवेचन भी इस कोष के नरककाण्ड में विद्यमान है.

प्रथम देवाधिदेव काण्ड में तीर्थंकरों के विभिन्न अतिशय, आचार्य, उपाध्याय और मुनि के नामों के विवेचन के अनन्तर यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा एवं समाधि का विवेचन किया है. योग के उक्त अष्टांगों की परिभाषाएँ जैनागमानुसार अंकित की गयी हैं.

देवकाण्ड में भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देवों के भेद-प्रभेद और उनके पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं. भवनवासी देवों के अन्त में जुड़े हुए कुमार शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है—**"कुमारवदेते कान्तदर्शनाः सुकुमाराः मृदुमधुरललितगतयः शृंगाराभिजातरूपविक्रियाः कुमारवच्चोद्धतवेषभाषाभरणप्रहरणावरणयानवाहनाः कुमारवच्चोल्वणरागाः क्रीडनपराश्चेत्यतः कुमार इत्युच्यन्ते"**. अर्थात्—ये देव कुमार के समान देखने में सुन्दर, मृदु, मधुर एवं ललित गतिवाले, शृंगार-सुन्दर रूप एवं विकार वाले और कुमार के समान ही उद्धत वेष, भाषा, भूषण, शस्त्र, आभरण, यान तथा वाहन वाले एवं क्रीडापरायण होते हैं. अतएव ये कुमार कहे जाते हैं. देवों के निवास का वर्णन करते हुए कहा है—

"भवनपतयोऽशीतिसहस्राधिकयोजनलक्षपिंडायां रत्नप्रभायामूर्द्ध्वमधश्च योजनसहस्रैकैकमपहाय जन्माऽऽसादयंति. व्यन्तरास्तस्या एवोपरि यत्परित्यक्तं योजनसहस्रं तस्याध ऊर्ध्वञ्च योजनशतमेकैकमपहाय मध्येऽष्टसु योजनशतेषु जन्म प्रतिलभन्ते. ज्योतिष्कास्तु समतलाद् भूभागात् सप्त शतानि नवत्यधिकानि योजनानामारुह्य दशोत्तरयोजनशत-पिण्डे नभोदेशे लोकान्तात् किंचिन्न्यूने जन्म गृह्णन्ति. वैमानिका रज्जुमध्यर्द्धामधिरुह्याऽतः सौधर्मादिषु कल्पेषु सर्वार्थसिद्ध-विमानपर्यवसानेषूत्पद्यन्ते".

प्रथम भवनवासी देव एक लाख अस्सी हजार योजन परिमित रत्नप्रभा में एक-एक हजार योजन छोड़कर जन्म ग्रहण करते हैं. व्यन्तरदेव उस रत्नप्रभा के ऊपर छोड़े गये एक हजार योजन के ऊपर तथा नीचे एक-एक सौ योजन छोड़कर बीचवाले आठसौ योजन में जन्म ग्रहण करते हैं. ज्योतिष्क देव समतल भूभाग से सात सौ नब्बे योजन पिण्डवाले तथा लोकान्त से कुछ कम आकाश प्रदेश में जन्म ग्रहण करते हैं और वैमानिक देव डेढ़ रज्जु चढ़कर सर्वार्थसिद्धि विमान के अन्त तक सौधर्मादि कल्पों में जन्म ग्रहण करते हैं. अपने-अपने नियत स्थानों में उत्पन्न भवनवासी आदि देव लवण समुद्र, मन्दिर, पर्वत, वर्षधर एवं जंगलों में निवास तो करते हैं पर उनकी उत्पत्ति पूर्वोक्त नियत स्थानों के अतिरिक्त अन्य स्थानों में नहीं होती है. अतएव निकाय शब्द का निवासार्थ या सहार्थ में प्रयोग किया गया है.

आचार्य हेम ने जैन आचार-व्यवहार की शब्दावलि को प्रमुखता दी है. अणुव्रत, महाव्रत, दशधर्म, ध्यान एवं समिति गुप्ति आदि का भी विवेचन किया है. इन्होंने पानी छानने के छनने के दो नाम लिखे हैं—नक्तक और कर्पट. स्वोपज्ञ-वृत्ति में नह्यते शिरसि नक्तकः "कीचक" (उणा ३३) इत्यके निपात्यते नक्तं भव इति वा, द्रवद्रव्यं येन पूयते तत्र रूढोऽयं तत्तुल्येऽपि वस्त्रे प्रतीतो वर्तते. कल्पते कर्पटः पुंक्लीबलिंगः "दिव्यवि" (उणा १४२) इत्यटः. अतएव स्पष्ट है कि आचार्य हेम ने जैन संस्कृति की शब्दावलि को बड़े सुन्दर और सुव्यवस्थित ढंग से इस कोष में अंकित किया है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपसंहार :—आचार्य हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि कोष द्वारा संस्कृत कोषसाहित्य को अपूर्व रत्न प्रदान किया है. इस कोष का संस्कृति, साहित्य, भाषाविज्ञान एवं नवीन शब्दराशि की दृष्टि से अद्वितीय स्थान है. संस्कृत के अन्य कोषों में न तो इतने अधिक शब्द ही मिलते हैं और न सांस्कृतिक शब्दावलि की इतनी स्पष्ट व्याख्याएँ ही की गयी हैं. यह कोष अपार शब्दराशि का प्रयोग करने की दिशा की ओर संकेत करता है. हेम ने अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा इस कोश को इतना सम्पन्न और समृद्ध बनाया है, जिससे अकेले इस कोष को अपने पास रख लेने से शब्द-विषयक सांगोपाँग जानकारी प्राप्त की जा सकती है. अन्वेषक प्रतिभाओं को इस कोष में इतनी सामग्री उपलब्ध होगी, जिससे दो-तीन शोध-प्रबन्धों का निर्माण विभिन्न दृष्टियों से सहज में किया जा सकता है. वास्तव में आचार्य हेम की, संस्कृत कोषसाहित्य को यह अपूर्व देन है. आचार्य का गहन तत्त्वस्पर्शी पाण्डित्य एवं बहुज्ञता इस कोष के द्वारा सहज में जानी जा सकती है. धन्य हैं आचार्य हेम और धन्य हैं उनकी कोषविषयक अपूर्व विद्वत्ता !

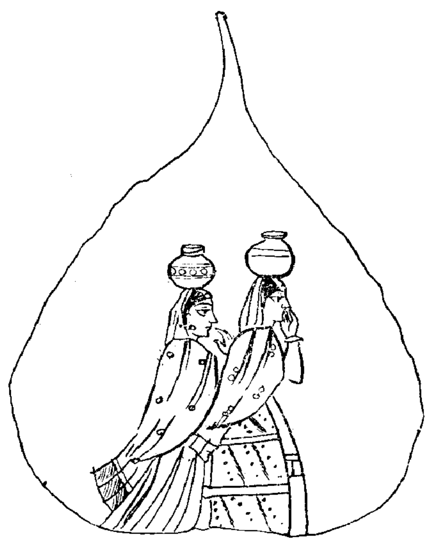

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org